International Journal of Geography, Geology and Environment

P-ISSN: 2706-7483
E-ISSN: 2706-7491
NAAS Rating (2025): 4.5
IJGGE 2025; 7(10): 41-45
www.geojournal.net
Received: 22-07-2025
Accepted: 25-08-2025

ओम प्रकाश साहू
भू-विज्ञान विभाग, शा. मॉडल साइंस कॉलेज ,जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत

विनिशा सिंह
भू-विज्ञान अध्ययन शाला, बरकतुल्लाह विश्वविद्यालय भोपाल, मध्य प्रदेश, भारत

पीताम्बरा साहू
भूगोल विभाग, शा. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा, मध्य प्रदेश, भारत

सुशीला द्विवेदी
भूगोल विभाग, शा. महाविद्यालय रायपुर कर्चुलियान, जिला रीवा, मध्य प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
ओम प्रकाश साहू
भू-विज्ञान विभाग, शा. मॉडल साइंस कॉलेज ,जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में जल संसाधनों का महत्व, संरक्षण एवं प्रबंधन

ओम प्रकाश साहू, विनिशा सिंह, पीताम्बरा साहू एवं सुशीला द्विवेदी

DOI: https://www.doi.org/10.22271/27067483.2025.v7.i10a.427

सारांश
प्राचीन भारतीय वेदों के अध्ययन से ज्ञात होता हैं, कि वैदिक काल में जल प्रबंधन का कार्य वृहत एवं उत्तम तकनीकों से किया जाता था। 'जल ही जीवन है' अर्थात् जल की बर्बादी नहीं करनी चाहिए, जल का उचित प्रबंधन करना अति आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में वैदिक काल में किये गए जल संसाधनो के संरक्षण एवं प्रबंधन के कार्यों की व्याख्या की गयी है। हम यह पूरी तरह से भूल चुके है कि जल नहीं तो जीवन ही नहीं रहेगा, परन्तु आज भी देश में यत्र तत्र वैदिक काल की तरह जल संरक्षण और प्रबंधन की विधियाँ देखने को मिलतीं हैं और उन्हीं विधियों को अल्प परिवर्तनों के साथ अपना कर हम वर्तमान पर्यावर्णीय समिस्याओं से मुक्ति पा सकते है। वैदिक काल में जल प्रबंधन का कार्य प्राकृतिक और कृतिम दोनों ही विधियों से करते थे। अतः वैदिक काल के जल प्रबंधन की तकनीकों एवं उसके क्रियान्वयन के तौर तरीकों का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। इस शोध पत्र में वैदिक काल एवं अन्य प्राचीन साहित्य में वर्णित जल संसाधनों के महत्व, संरक्षण एवं प्रबंधन पर विस्तार से चर्चा की गयी है।

मुख्य शब्द: वैदिक काल, जल संसाधनों का महत्व, संरक्षण, प्रबंधन।

प्रस्तावना

जल एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। समस्त मानव सभ्यता मीठे जल स्रोतों पर ही निर्भर रही है। मानव इन जल स्रोतों का विभिन्न प्रकार से उपभोग करता आया है, किन्तु वर्तमान में उपभोग की अप्रत्याशित वृद्धि से जल संसाधनों की उपेक्षा की गई है (मणि, 2008) [7]। मनुष्य व अन्य जीवजंतुओं का जीवन सुचारु एवं व्यवस्थित ढंग से चल सके, इस उद्देश्य से परमपिता परमात्मा ने जीव जगत की रचना से पहले ही उन महत्वपूर्ण पदार्थो की संरचना कर व्यवस्था की, जो उनके लिए आवश्यक हैं। अग्नि के बाद प्रथ्वी पर जल अधिक महत्वपूर्ण है। परमात्मा की यह रचना हमरे जीवन के अस्तिव को बनाये रखने में सहयोगी है। मनुष्य के शरीर का निर्माण प्रकृति के पंच मूलभूत तत्वों जैसे- जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी व आकाश से हुआ है। हमारे वेदिक वेद शास्त्रों में जल के महत्व को स्वीकार किया गया है। खन्ना (2013) [4] वेद, पुराण, महाभारत, एवं वृहत संहिता आदि का सन्दर्भ देकर लिखते है कि वर्षा के जल, भूमिगत जल एवं अन्य स्रोतों से प्राप्त जल का उपयोग सार्थक रूप से किया जाना चाहिए। सृष्टि की रचना में भी अग्नि तत्व के पश्चात जल तत्व का ही स्थान आता है। यानी अग्नि से जलोत्पत्ति हुई है। मानव जीवन ईश्वर द्वारा निर्मित सभी तत्वों पर आश्रित है, परन्तु इन सब में जल का एक मुख्य विशिष्ट स्थान है। जल के आधार पर ही संपूर्ण सृष्टि की रचना हुई है। जल के महत्व को वैदिक काल से लेकर आज तक सभी ने एक मत होकर स्वीकार किया है। जल न केवल पीने के लिए अपितु सम्पूर्ण ब्याधियों में औषधि के रूप में भी प्रयोग किया जाता रहा है। यजुर्वेद में कहा गया है कि जल समस्त रोगों की औषधि है। जल की सुरक्षा प्राचीन काल से ही हमारे महान पूर्वजों, ऋषि, एवं संतों के द्वारा की जाती रही है। आज मनुष्य बहुत स्वार्थी प्रवृत्ति का हो गए हैं। वाह जीवन मूल्यों को नष्ट कर अपनी आवस्यकताओं की पूर्ति करने हेतु अधाधुंध तरीके से जल का दोहन कर रहा है तथा औद्योगिक क्षेत्रों द्वारा जल के प्राकृतिक स्वरूप को भी नस्त कर रहा है। जल में बढ रहे प्रदुषण के कारण लोग असमय कल कवलित हो रहे हैं। हमें बेकार बहते हुए जल को रोकने के लिए प्रयास करने होंगें। हमें इस सर्वोपयोगी प्रकृतिक धरोहर की सुरक्षा का दायित्व लेना होगा जिससे हम भविष्य आने वाली भयावह स्थिति से निपट सकें। ऐसी स्थिति से बचने के लिए हमें अपने वैदिक सिद्धांतों का ध्यान रखना अवश्य हो जाता है। वर्तमान समय में हो रही अतिवृष्टि व अनावृष्टि जैसी भयावह समिस्याओं का निवारण भी हमारे संकल्प से ही होगा। जल में थूकना, मल-मूत्र त्यागना, कूड़ा व पूजा के बाद फूल-पत्तों को पानी में फेकना, अस्थि विसर्जन, मूर्ति विसर्जन, जल में रसायनिक रंगों का घोलना आदि पाप का कार्य मना जाये। ऋषियों का एक मात्र उद्देश्य यही रहता था, कि जल को सबसे अधिक सुरक्षा प्रदान की जाय क्योंकि जल ही जीवन है. । इन्हीं सत्य सनातन वैदिक परंपराओं को आधार मानकर वैदिक पद्धति एवं आधुनिक शिक्षा के समन्वय से जल संसाधनो संरक्षण एवं प्रबंधन के कार्य को संपन्न किया जा सकता है। जल के बिना धरती बिलकुल सूनी हो जाएगी। अतः जल संसाधनों का संरक्षण एवं प्रबंधन करना हमारा नैतिक जिम्मेदारी हो जाती है। आइए जल की सुरक्षा के लिए हम सब मिलकर कदम बढ़ाएं हैं। इस शोध पत्र में हम प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा के अन्तर्गत वैदिक तथा अन्य प्राचीन कालीन साहित्य में दिए गए जल संसाधनों के महत्व, संरक्षण एवं प्रबंधन पर चर्चा-परिचर्चा करेंगे।

वैदिक काल में जल संसाधनों का महत्व

प्राचीन भारतीय संस्कृति में जल को जीवन माना गया है- "जलमेव जीवनम्"। हमारे वैदिक साहित्य में जल के स्रोत्रों, जल की गुणवत्ता, जल संरक्षण, तथा जल का विभिन्न प्राणियों के लिए महत्व आदि पर बहुत अधिक बल दिया गया है। निचे वैदिक काल में जल की अवधारणाओं का वर्णन निम्नानुसार दिया जा रहा है-

ऋग्वेद

ऋग्वेद में निम्नलिखित विन्दुओं पर पानी का वर्णन किया गया है-

- ऋग्वेद में नदियों को माता के समान दर्जा दिया गया है। नदियों का वहता हुआ जल सभी प्राणियों को तृप्त करता हैं। आनन्द को बढाने वाली तथा अन्न व वनस्पति को उत्पन्न करने वाली होतीं हैं (ऋग्वेद, 7.50.4)।
- ऋग्वेद में वैदिक काल की जीवन शैली, सामाजिक व्यवस्था, कृषि और समाज द्वारा उगाई गई फसलों के बारे में स्पष्ट उल्लेख है। सिंचाई के साधन और कच्चे एवं पक्के कुओं का भी उल्लेख में किया गया है (ऋग्वेद 19.4.2)।
- ऋग्वेद में कहा गया है कि हे मनुष्यों! अमृत तुल्य तथा गुणकारी जल का सही प्रयोग करने वाले बनो। जल की प्रशंसा और स्तुति करने के लिए सदैव ही तैयार रहो (ऋग्वेद, 23.19)।

यजुर्वेद

यजुर्वेद में निम्नलिखित विन्दुओं पर जल का वर्णन किया गया है-

- यजुर्वेद में जल के औसधीय गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जल को नष्ट मत करो। यह अमूल्य निधि है। आयुर्वेद में जल को औषधी माना गया है। (यजुर्वेद 6.22)।
- यजुर्वेद के श्लोक (16.37) में भी मनुष्य को कुओं, तालाबों, बांधों के माध्यम से वर्षा एवं नदी के जल का संग्रहण कर कृषि एवं अन्य प्रयोजनों के उपयोग के लिए, तथा जहाँ पानी की आवश्यकता हो उन स्थानों पर पानी को पहूचाने का निर्देश दिया गया है।
- यजुर्वेद में वर्षा जल तथा बहते हुए जल के विषय में कहा गया है, कि हे मनुष्य, वर्षा तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त होने वाला जल जैसे कुएं, बावड़ियाँ, एवं तालाब आदि के जल में बहुत अधिक पोषण तत्व होते हैं (चित्र-1)। यह पोषक तत्व युक्त जल पीकर हमें निरोगी तथा शक्तिशाली बनना चाहिए।

चित्र 1: प्राचीन काल में बावड़ी तथा कुएं के जल का उपयोग।

अथर्ववेद

अथर्ववेद में जल का निम्नलिखित बिन्दुओं पर वर्णन किया गया है-

- जल को प्रदुषित होने से बचाना चाहिए तथा हमें हमेशा ऐसे प्रयास करने चहिये कि जल प्रदूषित न हो। इस विषय में अथर्ववेद में कहा गया है कि जल को नष्ट मत करो (अथर्ववेद 1.6.4)।
- अथर्ववेद के श्लोक (अथर्ववेद,1.31) में बताया गया है, कि जो लोग नौका परिवहन, मनोरंजन, कृषि आदि के प्रयोजनों के लिए नदी, कुएं, नहरों आदि के माध्यम से वर्षा जल का बुद्धिमानी से उपयोग करते हैं, वे हर समय समृद्ध होते है। अर्थात "व्यक्ति को पीने, कृषि, उद्द्योगों, आदि में उपयोग के लिए पहाड़ों, कुओं, नदियों एवं वर्षा जल के लिए समुचित प्रबंध करने चाहिए"।
- अथर्ववेद में नौ प्रकार के जलों का उल्लेख किया गया है जिसमें प्राकृतिक झरनों से बहने वाला जल, हिमयुक्त पर्वतों से बहने वाला जल, वर्षा से प्राप्त जल, नदियों में तेज गति से बहता हुआ जल, अनूप देश का जल अर्थात् ऐसे प्रदेश का जल जहां पर दलदल अधिक हो। मरुभूमि का जल, घड़े में स्थित जल, किसी यंत्र के द्वारा खोदकर निकाला गया जल, जैसे-कुएं का जल, स्रोत का जल, एवं तालाब का जल आदि। (NIOS, tutorial)
- वर्षा के जल को संरक्षित करना चाहिए क्योंकि यह सर्वाधिक शुद्ध जल होता है। इस विषय में अथर्ववेद में कहा गया है, कि वर्षा का जल हमारे लिए बहुत कल्याणकारी है (अथर्ववेद 19.1.4)।
- प्रदूषित जल को शुद्ध किये जाने के क्रम में वेदों में कहा गया है कि वायु तथा सूर्य दोनों जल को शुद्ध करते हैं। सूर्य की किरणें जल के कीटाणुओं को नष्ट कर जल को शुद्ध करती है। अथर्ववेद में 'मित्रा' तथा 'वरुण' को वर्षा के देवता कहा गया है। मित्रा तथा वरुण के मिलने से जल की उत्पत्ति होती है। मित्रा तथा वरुण क्रमशः आक्सीजन तथा हाइड्रोजन के प्रतीक है (NIOS, tutorial)।
- अथर्ववेद के श्लोक (अथर्ववेद, 23.1) में कहा गया है कि हमारे पास उपलब्ध जल संसाधनों के संरक्षण एवं कुशल उपयोग के माध्यम से सूखा प्रबंधन पर संदर्भ दिया गया हैं। नदी, कुएं आदि का जल, अगर कुशलता से उपयोग किया जाए, तो सूखे की तीव्रता कम हो जाएगी।
- इसी प्रकार, अथर्ववेद के श्लोक (अथर्ववेद, 77.8) में राजा को निर्देश दिया गया है कि वे कृषि, उद्योग आदि हेतु जल उपलब्ध करवाने एवं दो क्षेत्रों के बीच नौका-परिवहन की सुविधा प्रदान करने हेतु पहाड़ों पर उपयुक्त नहरों का निर्माण करें।
- अथर्ववेद के श्लोक (अथर्ववेद,100.2) में कहा गया हैं कि विद्वान लोग कुएं, तालाब, नहरों आदि के माध्यम से मरूस्थलीय क्षेत्रों में जल लाते हैं। इसके साथ साथ इस बात पर जोर दिया गया कि मनुष्य को सूखे, बाढ़ और प्राकृतिक आपदाओं के बारे में पहले से सोचना चाहिए और तद्नुसार निवारक उपाय करने चाहिए।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वेदों में जल को बहुत अधिक महत्व दिया गया है, तथा उसके सभी प्रकारों को चिहिन्त किया गया है; ताकि जल संरक्षण कर

सकें। आज हमें जरुरत है कि हम हमारी प्राचीन ज्ञान परम्परा के संरक्षण के इस संदेश को ग्रहण करें और जल को सरंक्षित करने का प्रयास करें। वेदों में कहा गया है कि वर्षा के होने से जल में प्रवाह आता है और नदी के रूप में जल प्रवाह को प्राप्त करता है। प्रवाह युक्त जल को हमारे संस्कृति में पवित्र माना गया है। तभी तो हमारी संस्कृति में नदियों को माता के समान पूजनीय माना गया है। नदियों की पवित्राता के संबंध् में वैदिक साहित्य में कहा गया है कि ऐसी नदी जो पर्वत से निकल कर समुद्र तक प्रवाहित होती है एवं पवित्र रहतीं हैं। इस बात के माध्यम से वैदिक ऋषि हमें यह संदेश देना चाहते हैं कि नदियों का निर्बाध्य रूप से प्रवाह होना चाहिए (चित्र-2)।

चित्र 2: प्राचीन गंगा नदी का अबाध्य प्रवाह

अन्य प्राचीन भारतीय साहित्य

हमारे प्राचीन भारतीय साहित्य में जल के महत्व, संरक्षण एवं प्रबंधन पर पर भी वर्णन किया गया है जो निम्नुसार है-

- विश्व के कई देशों की तरह, भारत में भी सभ्यता नदियों के किनारे या उसके आसपास विकसित हुई है। नदियाँ राष्ट्रीय संस्कृति का एक प्रतीक मानी जातीं है। सिंधु घाटी सभ्यता, जो सबसे प्राचीन सभ्यताओं में से एक थी, विश्व की सबसे विशाल सभ्यता थी, जिसमें सार्वजनिक और निजी स्नानागृह वाले संबद्ध एवं पूर्णरूप से योजनाबद्ध शहर थे, ईंटों से निर्मित भूमिगत नालियों के माध्यम से सीवरेज प्रणाली, और कई जलाशयों और कुओं की एक कुशल जल प्रबंधन प्रणाली थी (चित्र-3)। सिंचाई के लिए नहरों का व्यापक रूप से उपयोग सिंचाई हेतु कृषि के लिए किया जाता था, विभिन्न प्रकार के कुएँ, जल भंडारण प्रणालियाँ और कम लागत और टिकाऊ जल संचयन वाली तकनीक विकसित की गई थी (नायर, 2004, NIH, 2019) [5]।

(स्रोत: https//rainwaterharvesting.files.wordpress.com)

चित्र 3: लोथल में खोजे गए 2600 ई.पू. के कुएं

- चरक संहिता में आचार्य चरक ने भी भूजल की गुणवत्ता पर चर्चा की है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में माना गया है कि ब्रह्मण्ड में जितने भी प्रकार का जल है हमें उसका संरक्षण करना चाहिए। नदियों के जल को सर्वाधिक संरक्षण योग्य माना गया है क्योंकि वे कृषि क्षेत्रों को सींचती है जिससे प्राणिमात्र का जीवन चलता है। नदियों का बहता हुआ जल शुभ माना गया है। अतः हमें नदियों को प्रदुषित नहीं करना चाहिए (NIOS, tutorial)।
- जैन एवं बौद्ध धर्म के दौरान कृषि तथा पशुपालन की प्रमुख भूमिका थी एवं चैनल सिंचाई प्रचलित थी (बागची और बागची,1991) [6]।
- मैकलीन III और डॉर्न (2006) [8] कहते हैं कि 'मौर्य साम्राज्य पहली एवं एक महान हाइड्रोलिक सभ्यता थी'। इस दौरान समाज कल्याण के लिए जल संसाधनों का कुशलता पूर्वक उपयोग एवं संरक्षण किया गया था, जो उस समय के ज्ञान के स्तर को प्रदर्शित करता है। मौर्य कल के दौरान, देश के विभिन्न हिस्सों में वर्षा की क्षेत्रीय जाकारी रखने के लिए वर्षा मापक यंत्र स्थापित किये गए थे और प्राप्त की गई जानकारी के आधार पर, कृषि

अधीक्षक द्वारा देश के विभिन्न हिस्सों में बिज बोने के निर्देश दिए जाते थे (श्रीनिवासन, 1976) [13]।

जल संसाधनों का संरक्षण एवं प्रबंधन

प्राचीन काल से ही मनुष्य ने विकास के लिए पानी के महत्व को समझा तथा लगभग सभी पुरातन सभ्यताओं में जल संसाधनों के विकास एवं संरक्षण पर जोर दिया गया था। जल संरक्षण पर बल देते हुए ऋग्वेद में कहा गया है कि जल हमारी माता जैसा है। जल घृत के समान हमें शक्तिशाली और उत्तम बनाता है। इस तरह का जल जिस रूप में, जहां कहीं भी हो वह संरक्षित करने योग्य हैं (ऋग्वेद, 10.17.10) । हमारे देश में मृदा एवं जल के संरक्षण की आकर्षक एवं महत्त्वपूर्ण परंपराएं रही है तथा आज के समय में भी स्थानीय लोग पारंपारिक संरक्षण प्रथाओं का पालन करते हैं। कृषि के अतिरिक्त भी पुरातन कल में जल संरक्षण को काफी महत्त्व दिया जाता था। मौर्य काल में, मगध क्षेत्र में आहाड और पाइन बाढ़ के जल हेतु संग्रहण तंत्र थे। आहाड तीन ओर से तटबंधों वाले जलाशय थे, जो जल निकासी लाइनों जैसे कि छोटी नाली या कृत्रिम पाइनस के अंत में निर्मित होते थे। सिंचाई के उद्देश्य और आहाडो में पानी की आवक के लिए पाइन एक प्रकार के डायवर्जन चैनल थे, जो नदी से दूर होते थे। निरूपण के तौर पर आहाड पाइन प्रणाली को चित्र-4 में दर्शाया गया है। वर्षा की अधिकता या कमी का प्रबंधन करने के लिए कृषि नियोजन सामान्य था। अर्थशास्त्र (कौटिल्य 400 ई.पू.) में बहुत अच्छी तरह से वर्णित है कि 'वर्षा के अनुसार (कम या ज्यादा) कृषक को बीजों की बोनी करनी चाहिए जिन्हें या तो अधिक या कम जल की आवश्यकता होती है'।

चित्र 4: आहाड पाइन प्राचीन सिंचाई प्रणाली।

कौटिल्य का कहना है कि 'राजा को जल से भरे बांध, जलाशय आदि का निर्माण या तो बारहमासी स्रोत से अथवा किसी अन्य स्रोत से करना चाहिए या अर्थशास्त्र (कौटिल्य 400 ई.पू.) के अनुसार उन्हें स्वयं के जलाशयों का निर्माण करने वालों को स्थल, सड़क, लकड़ी और अन्य आवश्यक सामग्री प्रदान कर सकते हैं। वह आगे कहता है कि राजा जलाशयों या झीलों में मछली पकड़ने, नौकायन और व्यापार करने के संबंध में अपने सही स्वामित्व का प्रयोग करेगा। प्राचीन काल में जल ग्रहण क्षमता को बढ़ाने हेतु खेतों के आसपास मेंड़ों/बंधान का निर्माण किया गया था। उचित आदान-प्रदान सुविधाओं के लिए नदी के जल का उपयोग करना, स्लूस गेट के साथ सामरिक सीमाओं पर बांधों का निर्माण किया गया था। सिंचाई में उत्तम दक्षता प्राप्त करने के लिए उस समय कंड्यूट्स का भी निर्माण किया गया था (NIH, 2019)। चित्र-5 में राजा भोज द्वारा निर्मित मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में राजा भोजताल को दर्शाया गया है।

चित्र 5: राजा भोज द्वारा निर्मित प्राचीन झील 'भोजताल', भोपाल (म.प्र.)।

हाल ही में, शटक्लिफ और शॉ (2001) [12] ने मध्य प्रदेश की बेतवा नदी में सांची साइट जो एक प्रसिद्ध बौद्ध एवं यूनेस्को की एक विश्व विरासत स्थल पर अनुसंधान किया गया है, जहाँ पर स्पिलवेज से लैस कई बांध मिले हैं। जलाशयों के डिजाइन के अलावा, बड़े बांधों में से कम से कम दो पर स्पिलवेज की उपस्थिति, जो यह दर्शाता है कि बाढ़ प्रबंधन को ध्यान में रखकर बनाए गए थे। अर्थशास्त्र (कौटिल्य 400 ई.पू.) हमें उन बाँधों और बंधों का भी विस्तृत विवरण देता है जो मौर्य साम्राज्य काल में सिंचाई के लिए बनाए गए थे। पानी की आपूर्ति प्रणालियों को सख्त नियमों और विनियमों के ढांचे के भीतर अच्छी तरह से प्रबंधित किया गया था। विशेष रूप से, एक संगठित जल मूल्य निर्धारण प्रणाली थी, जो जल प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा थी, को भी इसी समय विकसित किया गया था, जैसा कि अर्थशास्त्र (कौटिल्य 400 ई.पू.) की निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा स्पष्ट किया गया है – 'जो लोग हाथ से श्रम करके (कंधों पर पानी ढो कर) सिंचाई करते हैं, वे उपज का 1/5 हिस्सा पानी का मूल्य देंगे जो लोग बैलगाड़ियों द्वारा जल का प्रयोग करते हैं वो उपज का तीसरा या चौथा हिस्सा जल कर के रूप में देंगे अर्थशास्त्र (कौटिल्य 400 ई.पू.)'।

वृहत संहिता में, हमें तालाबों के अभिविन्यास के बारे में कुछ संदर्भ मिलते हैं ताकि जल को कुशलता पूर्वक संग्रहित और संरक्षित किया जा सके, जलाशय की रक्षा के लिए वृक्षारोपण के प्रकार और जलाशय को किसी भी संभावित नुकसान से बचाने के लिए उपाय इस प्रकार है-

वृहत संहिता के श्लोक (54.118) में बताया गया कि पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर स्थित एक तालाब में लम्बे समय तक पानी रहता है जबकि उत्तर से दक्षिण की ओर स्थित तालाब हवाओं द्वारा उठाई गई लहरों द्वारा खराब हो जाता है। इसे स्थिर करने के लिए, दीवारों को लकड़ी के साथ या पत्थर के साथ कूटकर और इसके आस-पास की मिट्टी को हाथियों एवं घोड़ों आदि द्वारा रौंदवा कर मजबूत करना पड़ता था।

वृहत संहिता के श्लोक (54.119) में बताया गया है कि नदी तटों को ककुभा, वात, अमरा, पलास, कदम्ब, निकुला, जम्बू, वेतसा, निपा, कुरावका, ताला, अशोका, मधुका और बकुला आदि पेड़ों से आच्छादित करना चाहिए।

अगले श्लोक (54.120) में स्पिलवे के निर्माण का निर्देशन किया गया है कि पानी की निकासी के लिए पत्थरों से एक तरफ एक मार्ग बनाया जाना चाहिए। एपर्चर के

बिना एक पैनल को एक फ्रेम में बद्ध किया जाता है, जो भूमि के साथ जकड़ा हुआ होता है।

इस आलेख से, हम समझ सकते हैं कि प्राचीन भारत में जल प्रबंधन को उचित महत्व मिल रहा था और यहाँ तक कि तटों के संरक्षण, स्पिलवे इत्यादि और अन्य छोटे-छोटे पहलुओं पर भी ध्यान दिया गया था। प्राचीन काल में कृत्रिम जलाशयों के उचित स्थान पर ध्यान दिया जाता था। विभिन्न तकनीकों को लागू किया गया था एवं समान्य रूप से विभिन्न सामग्रियों का उपयोग, कार्यो के निर्माण के लिए किया गया था। प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है, कि जलविज्ञान से संबंधित कार्य सर्वप्रथम दक्षिण भारत में अस्तित्व में आए होंगे। वर्ष 1369 ई0 के भास्करा भवदुरा के पोरूमिला जलाशय के शिलालेख दक्षिण भारत में जलाशय और बांधों के निर्माण की विस्तृत विधि पर प्रकाश डालते है। प्राचीन भारतीय साहित्य में एक अच्छे जलाशय के घटकों का अच्छी तरह से वर्णन किया गया है। श्रीनिवासन(1970) [14] के अनुसार एक अच्छे जलाशय की निम्नलिखित 12 आवश्यकताएं हैं-(i) एक राजा नीतिपरायणता से संपन्न, अमीर, खुश एवं स्थायी धन संचय तथा प्रसिद्धि की इच्छा रखने वाला होना चाहिए, (ii) ब्राह्मण को जलविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए, (iii) कठोर मिट्टी से भरपूर जमीन होनी चाहिए, (iv) स्रोत से तीन योजन दूरी पर मीठे पानी की बहने वाली नदी होनी चाहिए, (v) पहाड़ी के कुछ हिस्से जलाशय के संपर्क में होने चाहिए जिसके बीचों-बीच कठोर पत्थर की दीवार का एक बांध निर्मित हो सके, (vi) बांध बहुत लंबा नहीं, बल्कि मजबूत होना चाहिए, (vii) बाहर की तरफ फल/कृषि योग्य भूमि होनी चाहिए जिससे जलाशय के पानी का उपयोग कर पर्याप्त मात्रा में धनधान्य का उत्पादन किया जा सके, (viii) जलाशय तली विसाल और गहरी होना चाहिए, (ix) सीधी और लंबी पत्थरों वाली एक खदान आसपास होनी चाहिए, (x) आसपास का क्षेत्र फल पर्याप्त होना चाहिए, (xi) पानी का एक रास्ता होना चाहिए जिसमें पहाड़ के हिस्से/ किनारे मजबूत होना चाहिए और (xii) बांध निर्माण की कला में कुशल पुरूषों का एक दल होना चाहिए। इस प्रकार इन 12 अनिवार्य अपेक्षाओं से धरातल पर आसानी से एक उत्तम जलाशय निर्मित किया जा सकता है। इन बिंदुओं से बांधों और जलाशयों के निर्माण के संबंध में जल प्रबंधन के आधुनिक तकनीकी के साथ तुलना करने पर हम पाएंगे कि जहाँ तक सामान्य आवश्यकताओं का संबंध है उन दिनों की तकनीक भी आधुनिक परिष्कृत अभियांत्रिकी के बराबर थी। इन 12 अनिवार्यताओं के साथ-साथ 6 दोषों को भी पहचाना गया जो जलाशय की उपयोगिता को कम कर देंगे और जल संरक्षण मुश्किल हो जाएगा। श्रीनिवासन (1970) [14] के अनुसार ये दोष निम्नानुसार हैं:-

i) बांध से पानी का निकलना।
ii) लवणीय मिट्टी।
iii) दो राज्यों की सीमा पर स्थिति जलाशय।
iv) मध्य जलाशय में ऊँचाई।
v) पानी की कम आपूर्ति और सिंचित भूमि का व्यापक विस्तार।
vi) अपर्याप्त जल ग्रहण क्षेत्र और पानी की उपलब्धता का अधिक होना।

उपसंहार

उपर्युक्त अध्यन से यह ज्ञात होता है कि कुओं, तालाबों, जलाशयों और नहरों के माध्यम से पानी का उपयोग प्राचीन काल में प्रचलित था, इसके साथ-साथ रेगिस्थान में भी पानी की आपूर्ति का प्रयास प्राचीन कल में किया गया था। उस समय संगठित जल मूल्य निर्धारण प्रणाली प्रचलित थी और बाढ़, सूखा आदि प्राकृतिक आपदाओं के निवारण हेतु उपाय उपलब्ध थे। बांध और तालाबों की निर्माण सामग्री और विधियाँ, आवश्यक स्थल और अच्छी टंकियों की व्यबस्था एवं अन्य आवश्यकताएं जैसे नदी तटबंध सुरक्षा, स्पिलवेज आदि पर पर्याप्त जनकारी उपलब्ध थी। जलाशयों के समुचित स्थान और अभिविन्यास, नदी तटबंध के अस्तर, वाष्पीकरण नियंत्रण, सूखा प्रबंधन आदि के क्षेत्रों में उच्च स्तर का ज्ञान था। इस प्रकार, प्राचीन भारत सिंचाई और जल संरक्षण के क्षेत्र में विकास के उच्च स्तर पर था। लोगों के लिए बेहतर पेयजल आपूर्ति के अलावा कृषि उपज बढ़ाने के लिए प्राचीन काल के दौरान अत्याधुनिक सिंचाई सुविधाओं की स्थापना की गई थी। प्राचीन भारत जल प्रबंधन के क्षेत्र में अत्यधिक प्रगतिशील था। प्राचीन काल में वैज्ञानिक उपकरणों का अभाव होनेके बाबजूद उल्लेखनीय विकास हुआ था। यह आश्चर्य मन में प्रशंसा के भाव भर देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कौटिल्य. अर्थशास्त्र (400 ई.पू.). आर. समाज शास्त्री द्वारा अंग्रेजी में अनूदित. मैसूर मुद्रण एवं प्रकाशन हॉउस, मैसूर; 1967.
2. अथर्ववेद संहिता (3000 ई.पू.). महर्षि दयानंद सरस्वती (हिन्दी) द्वारा भाष्य. दयानंद संस्थान, नई दिल्ली-5 द्वारा प्रकाशित.
3. एन.आई.एच. प्राचीन भारत में जल विज्ञानी ज्ञान. राष्ट्रीय जल विज्ञान संस्थान, रुड़की, हरिद्वार, उत्तराखंड; 2019.
4. खन्ना विजय. जल संरक्षण प्रबंधन एवं जल जागरुकता. दिल्ली: किताबघर प्रकाशन; 2013.
5. नायर के.एस. रोल ऑफ वाटर इन द डैवलपमेंट ऑफ सिविलाइजेशन इन इंडिया – ए रिव्यू ऑफ एनसिएंट लिटरेचर, ट्रेडिशनल प्रैक्टिसेस एंड द बिलीफ्स ऑफ सिविलाइजेशन. वॉटर साइंस? (प्रोसीडिंग्स ऑफ द यूनेस्को / आईएएचएस / आईडब्लूएचए सिम्पोजियम, रोम दिसंबर 2003). आईएएचएस पब्लि. 286; 2004.
6. बागची के.एस., बागची एस.एस. हिस्ट्री ऑफ इर्रीगेशन इन इंडिया. भाग I: इर्रीगेशन इन एनसिएंट इंडिया (2295 ई.पू. से 11वीं सदी तक). इर्रीगेशन एंड पावर; 1991. पृ. 69–76.
7. मणि दिनेश. जल संसाधन एवं प्रबंधन. नवसाक्षर प्रकाशन, दिल्ली; 2008.
8. मैकक्लेन III जे.ई., डॉर्न एच. साइंस एंड टेक्नोलॉजी इन वर्ल्ड हिस्ट्री ऑफ वाटर: एन इंट्रोडक्शन. द्वितीय संस्करण. द जॉन्स हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी प्रेस, बाल्टीमोर, मैरीलैंड; 2006.
9. यजुर्वेद संहिता (3000 ई.पू.). महर्षि दयानंद सरस्वती (हिन्दी) द्वारा भाष्य. दयानंद संस्थान, नई दिल्ली-5 द्वारा प्रकाशित.
10. ऋग्वेद संहिता (3000 ई.पू.). महर्षि दयानंद सरस्वती (हिन्दी) द्वारा भाष्य. दयानंद संस्थान, नई दिल्ली-5 द्वारा प्रकाशित.
11. वराहमिहिर. वृहत संहिता (550 ई.). पं. अच्युत्यानन्द द्वारा संपादित और भाष्य. चौखंबा विद्या भवन, वाराणसी; 1988.
12. शटलिफ और शॉ जे. एनसिएंट इर्रीगेशन वर्क्स इन द सांची एरिया: एन आर्कियोलॉजिकल एंड हाइड्रोलॉजिकल इन्वेस्टिगेशन. साउथ एशियन स्टडीज 2001;17(1):55–75. doi:10.1080/02666030.2001.9628592.
13. श्रीनिवासन टी.एम. मेजरमेंट ऑफ रेनफॉल इन एनसिएंट इंडिया. आई जे एच एस 1976;11(2):148–157.
14. श्रीनिवासन टी.एम. ए ब्रीफ अकाउंट ऑफ एनसिएंट इर्रीगेशन इंजीनियरिंग सिस्टम प्रिवेलेंट इन साउथ इंडिया. इंडियन जर्नल ऑफ हिस्ट्री ऑफ साइंस 1970;5(2):315–325.
15. वेबसाइट.
16. राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय शिक्षा संस्थान (NIOS). भारतीय ज्ञान परंपरा में विज्ञान: जल संबंधी ज्ञान [Internet]. उपलब्ध: https://www.nios.ac.in/media/documents/OBE_indian_knowledge_tradition/Level_A/Vijnana-A_Hindi_OBE/Science-A_Hindi_Ch-6.pdf